RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-02
Issue-10
October-2017

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com

इलारानी सिंह : जीवन और साहित्य–साधना

श्यामल चौधरी

शोधार्थी, ति. माँ. भा. वि. वि., भागलपुर

जन्म

इलारानी सिंह का जन्म 1 जुलाई, 1945 को सहमौरा में हुआ था। इलारानी जब दो या तीन वर्षों की थी, उसी समय उनकी माता विन्दा देवी का आकस्मिक निधन हो गया। इस दुर्योग के कारण इलारानी अपनी दादी के अंक–आश्रित हो गयीं। दादी ने ही उनका लालन–पालन किया।

शिक्षा

इलारानी सिंह की प्रारंभिक शिक्षा–दीक्षा ग्रामीण परिवेश से प्रारंभ होकर महानगरीय परिवेश में परिणति पर पहुँची। उन्होंने एडमिशन परीक्षा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से 1959, आई.ए. कलकत्ता विश्वविद्यालय से 1962, बी.ए. हिन्दी प्रतिष्ठा भागलपुर विश्वविद्यालय से 1964 और एम.ए., सागर विश्वविद्यालय से 1966 में पास किया। यह उनका मातृभाषानुराग का ही प्रमाण है कि उन्होंने पुनः बिहार विश्वविद्यालय से मैथिली में एम.ए. (1967) किया।

जीविका

इलारानी सिंह ने अपनी शादी से पहले ही 09.12. 1966–04.11.1973 तक हिन्दी प्राध्यापिका के रूप में सूरजमल जालान गर्ल्स कॉलेज, कोलकाता से जीविका का श्रीगणेश किया। वहाँ वह एक यशस्वी प्राध्यापिका के रूप में चर्चित थीं। विशेष परिस्थितिवश उन्होंने 05.11.1973 को अत्यल्प समय के लिए भागलपुर विश्वविद्यालय के अंगीभूत इकाई सुन्दरवती महिला कॉलेज में हिन्दी की प्राध्यापिका के रूप में अपनी सेवा दीं। मातृभाषानुरागी इलारानी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा त्याग कर 1974 के ग्रीष्मावकाशोपरान्त तेज नारायण बनैली महाविद्यालय में मैथिली की प्राध्यापिका बन अपनी सेवा प्रारंभ की। जहाँ उन्होंने 09.04.1981 तक अपनी सेवा दीं। दुर्भाग्यवश भागलपुर त्यागने के बाद उन्होंने पुनः कोलकाता के सेठ आनंदराम जयपुरीया कॉलेज में हिन्दी की अध्यक्षा एवं उपाचार्या के पद पर मृत्युपर्यन्त (13 जून, 1995) अध्यापन कार्य किया। इसी कालावधि में फरवरी, 1981 से दिसम्बर, 1984 तक उन्होंने अंशकालिक हिन्दी प्राध्यापिका के रूप में यूको बैंक सेंट्रल कॉलेज, कोलकाता एवं यूनाइटेड कॉमर्शियल बैंक के हिन्दी एवं अहिन्दी प्रशिक्षु पदाधिकारियों को भी हिन्दी भाषा की शिक्षा दी।

सफल प्राध्यापिका

प्रो. इलारानी सिंह ने अपने 28–29 वर्षों के अध्यापन की अधिकांश अवधि कोलकाता में व्यतीत किया। उन्होंने भागलपुर में 05.11.1973 से 09.04.1981 तक (सात वर्ष, पाँच महीना, चार दिन) अध्यापन किया। उनके कुशल अध्यापन के विषय में श्री अशोक सिंह लिखते हैं– 1986 में पूजा की छुट्टी के बाद मैं बी.ए. हिन्दी (प्रतिष्ठा) में पढ़ने के लिए सेठ आनन्द राम जयपुरिया कॉलेज में भर्ती हुआ। भाषा–विज्ञान का विषय मेरे लिए नया था और नियमित कक्षाएँ न कर पाने के कारण चुपचाप आकर्षक व्यक्तित्व से भरपुर आई. आर. ए. (डॉ. इलारानी सिंह) के लेक्चर को सुन रहा था। जयपुरिया कॉलेज की प्रकृति के अनुरूप क्लास में अनुशासन था। भाषा–विज्ञान इतना रोचक विषय हो सकता है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे हो रहा था।

भाषा–विज्ञान मेरा प्रिय विषय हो गया था। वे हमेशा चाहती थीं कि विद्यार्थी पढ़ाई को पूरी गंभीरता से लें, किताबों की दुनिया के बाहर भी हस्तक्षेप करें। इसके लिए प्रेरणा देती थीं। क्लास में अनुशासन पसन्द करती थीं। लेकिन विद्यार्थियों की छोटी–से–छोटी समस्याओं को गंभीरता से सुनतीं और यथासंभव उन्हें पूरा करने का प्रयास करतीं।

उनकी डाँट और फटकार में स्नेह भरा रहता था और छात्रों के उत्कर्ष की कामना छिपी रहती थीं"[1]

प्रो. राजश्री शुक्ला प्रो. इलारानी सिंह के सूरजमल जालान गर्ल्स कॉलेज, कोलकाता में बी.ए. आनर्स की छात्रा थी। प्रो. शुक्ला इलारानी के सफल अध्यापन के विषय में उल्लेख करती हुई कहती हैं– जालान गर्ल्स कॉलेज में जब मैं बी. ए. ऑनर्स की पढ़ाई कर रही थी, तो वे हमें भाषा–विज्ञान पढ़ाने आई थीं। उनकी अनेक ऊँची डिग्रियों एवं प्रखर पांडित्य के विषय में सुन–सुनकर हम छात्राएँ कुछ आतंकित सी थीं, परंतु उन्हें देखकर, जानकर हमें एक सुखद आश्चर्य हुआ। उनकी सरलता, सौजन्य तथा अपनेपन ने जल्दी ही उन्हें लोकप्रिय बना दिया। उनके इसी अपन्त्व ने मुझ जैसी संकोची छात्रा को भी अपने वश में कर लिया था। मन के भीतर तक की थाह ले लेने वाली उनकी तलस्पर्शिनी दृष्टि के सम्मुख मन की परतें स्वतः ही खुलती जाती थीं। हम अपनी जटिल समस्यायें लेकर उनके पास जाते और वे अपने त्वरित, बुद्धि, पैनी दृष्टि और सहज मुस्कान से उसका शीघ्र ही समाधान कर देतीं .... ।"[2]

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

मैंने अपने इस अन्वेषण के क्रम में सुन्दरवती महिला महाविद्यालय एवं टी. एन. बी. कॉलेज, के तत्कालीन उनके सहकर्मियों से उनके अध्यापकीय गुण के विषय में जिज्ञासा किया तो सभी ने एक स्वर में उत्तर दिया कि वे सभी दृष्टिकोण से सफल प्राध्यापिका थीं। जैसा उनका उच्च व्यक्तित्व था वैसी ही कुशल प्राध्यापिका और संस्था के प्रति समर्पण–भाव सदा सबों के लिए अनुकरणीय रहा।

इलारानी की ख्याति से अभिभूत उनके एक अत्यंत निकट के संबंधी ने यह कहते हुए उनकी प्रशंसा की है– "इलाजी ने एक कुशल प्राध्यापिका के रूप में भागलपुर एवं कलकत्ता विश्वविद्यालयान्तर्गत ख्याति अर्जित की थीं। अपने सहज एवं मृदुल स्वभाव के कारण वे छात्र–छात्राओं में अत्यधिक चर्चित थीं।"[3]

प्रो. इलारानी अपने व्यक्तित्व की गरिमा को कभी खण्डित नहीं होने दिया। इस बात को स्पष्ट करते हुए श्री राम आह्लाद चौधरी ने कहा है– "दीदी प्राध्यापाकी दुनिया के छल–प्रपंच, भेद–भाव, ईर्ष्या–द्वेष से दूर रहकर, शिष्यों के बीच अकूत प्यार बाँटने में लगीं थीं। शायद ही कोई उनका ऐसा 'भदेड़न–खदेड़न' शिष्य हो। जिस पर उनके व्यक्तित्व की छाप न पड़ी हो। वस्तुतः वे भारतीय गुरू परंपरा में आलोक स्तंभ थीं। वे लोकप्रिय और निष्ठावान प्राध्यापिका थीं और उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता, जन–सम्बद्धता तथा उनके अधूरे कार्य हमारे लिए चुनौती हैं। सच तो यह है कि आचार–विचार में दीदी जितनी सरल और निश्छल थीं, उतनी ही वैचारिक जमीन पर प्रतिबद्ध।"[4]

छात्रों के भविष्य के प्रति उनकी गंभीर प्रतिबद्धता को अनुभव करते हुए प्रो. सुकीर्ति गुप्ता ने जब उनसे प्रश्न किया कि– "छात्रों के लिए कुछ कहना चाहोगी?" तो इसके जवाब में इलारानी सिंह ने कहा– "क्या करूं...। आजकल के छात्र कुछ पढ़ना ही नही चाहते। लगन और परिश्रम का अभाव है। साहित्य में उनकी रूचि नहीं रह गई।"[5]

डॉ. इला रानी सिंह, मैथिली विभाग, तेज नारायण बनैली महाविद्यालय से दिनांक 09.04.1981 को पद त्याग कर 10.04.1981 से सेठ आनन्द राम जयपुरिया कॉलेज कलकत्ता में हिन्दी की प्राध्यापिका बनीं। मुझे ऐसा लगता है कि उसके बाद से ही उन्हें मैथिली भाषा और साहित्य से विरक्ति हो गई हो। उन्होंने जयपुरिया कॉलेज में सेवारत होने के पश्चात् सुनील कुमार चट्टोपाध्याय लिखित 'विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय' विनिबंध का अंग्रेजी से मैथिली में मात्र एक पुस्तक का अनुवाद किया। उन्होंने इस विनिबंध को छोड़ मष्त्युपर्यन्त जब तक कलकत्ता में रहीं एक भी मैथिली पुस्तक नहीं लिखीं। ध्यातव्य है कि यदि वे मैथिली विभाग से संबद्ध रहतीं तो इस भाषा–साहित्य को बहुत कुछ देतीं। इस घटना को मैथिली के विकास में गतिरोध के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। 1981 से पूर्व उनका हिन्दी में मात्र एक काव्य–संग्रह 'रयि'[6] प्रकाशित हुआ था। 'रयि' के पाश्चात् 'वात्या'[7] काव्य–संग्रह के प्रकाशन के मध्य लगभग ग्यारह वर्षों तक उनकी साहित्यिक गतिविधि शून्य रही। हो सकता है कि इसके पीछे उनके विच्छेदित गार्हस्थ्य–दायित्व की व्यस्तता रही होगी। जिस साहित्यकार की सर्जनात्मक गतिविधि अनवरत चलती रही हो और हठात् बीच में ही ठमक जाए–यह एक आश्चर्य का विषय है। साथ ही, साहित्यकार की मानसिक स्थिति का अनुसंधान भी एक विषय बनकर सामने खड़ा हो जाता है। सोचनीय विषय है कि उनके जीवन में ऐसी कौन–सी दुःखद परिस्थिति आई जिससे साहित्य जगत् को इतनी बड़ी क्षति हुई। कैंसर से पीड़ित, मृत्यु के पाँच–छः वर्ष पूर्व उनके दो काव्य संग्रह, एक मौलिक 'फूटते हैं अंकूर'[8] और बांग्ला के साहित्यकार अंजन सेन की 'तीन विश्वे दिन रात्रि' का हिन्दी रूपान्तरण 'तीन विश्वों में दिन–रात'[9] प्रकाशित हुआ।

डॉ. इला रानी सिंह बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थीं। उनकी साहित्य–सर्जना अनुवाद और काव्य–रचना तक ही सीमित नहीं रही। उनके 'राउल वेल समीक्षा'[10] और 'कवि मुक्ति बोध'[11] हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में मील का पत्थर प्रमाणित हुआ। राउल वेल के पाठालाचन उनके वैदुष्य को प्रमाणित करता है। इतना ही नहीं उनके कुशल सम्पादन में 'मैथिलीशरण गुप्त : एक पुनर्मूल्यांकन'[12] प्रकाशित है, जिसके आमुख में उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त की साहित्यक गरिमा का विस्तृत वर्णन किया है। इस अध्याय में इला रानी सिंह लिखित हिन्दी पुस्तकों का विवेचन प्रस्तुत करना मेरा ध्येय है। अस्तु।

प्राध्यापिका इला रानी सिंह को मातृभाषा मैथिली, राष्ट्रभाषा हिन्दी और बंगला की अच्छी जानकारी थी। इसी के कारण उन्होंने बंगला से मैथिली, मैथिली से बंगला साथ ही हिन्दी से बंगला अनुवाद को आगे बढ़या। वैसे उनका हिन्दी से बंगला और मैथिली में प्रकाशित अनुवाद कार्य नगण्य है। हिन्दी से एक मात्र महान साहित्यकार जयशंकर प्रसाद की नाट्य–रचना 'ध्रुवस्वामिनी'[13] का बंगला अनुवाद प्रकाशित है। इसेक बावजूद शंभुनाथ लिखते हैं कि हिन्दी और बंगला के बीच वह एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक सेतु थीं।[14] यह सत्य है कि प्रसाद को बंगला में लाने का पहला सफल प्रयास उन्हीं का था।

इलारानी सिंह का लगभग बाइस वर्षों की उम्र में विवाह हुआ था। विवाह के बाद उनकी एक कविता है – 'भाव–संधि'। कवयित्री इस कविता में भाव व्यक्त करती हैं कि किसी नववधू का किसी अज्ञात, अपरिचित जीवन नाविक के भरोसे दाम्पत्य–लघु–तरी को पार करने के लिए छोड़ दिया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि कवि भविष्यद्रष्टा होता है। कवयित्री इलारानी ने अपने ही विषय में भविष्यवाणी व्यक्त कीं, और अन्त में यही हुआ कि उस अपरिचित जीवन नाविक के भरोसे अपनी जीवन तरी को बेड़ा पार नहीं लगा सकीं। व्यथित हो कहती हैं कि न जाने कितनी वधुएँ इस अपरिमेय स्निग्ध प्रवाह को काल–स्रोत कह अपने जीवन को व्यतीत कीं।

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

इलारानी की यह कविता 'भाव–संधि' लगभग 1980 के आस पास भाव–विच्छेद में बदल गयी और अपने को प्याज से तुलना करने लगीं–

धुप्प अंधेरे कमरे में भी
बिना अपेक्षित शर्त्तों के
प्याज के फूटते हैं अंकुर"[15]

दाम्पत्य कर्तव्य से मुक्त हो इलारानी अपनी तीनों संतानों के भरण–पोषण, लालन–पालन एवं शिक्षा–दीक्षा सम्पन्न करती हुई भाषा और साहित्य की साधना में निमग्न हो गईं। वे मृत्युपर्यन्त साहित्य–सृजन में लगी रहीं। कैंसर से पीड़ित दुर्दैन्य स्थिति में भी दुःख व्यक्त करती हैं– "उफ, मुझे कई अधूरे काम पूरे करने हैं। एक उपन्यास अधूरा है, उसे पूरा करना है। 'बलचनमा' का अनुवाद भी पूरा करना है।' इतना ही नहीं उनकी समरेश मजूमदार रचित 'काल वेला', नागार्जुन एवं राजकमल चौधरी की बंगला, हिन्दी एवं मैथिली रचनाओं का सम्पूर्ण आलोचनात्मक विश्लेषण, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का 'आनन्द मठ', शरत्चन्द्र का 'गृहदाह' इत्यादि को भी पूरा करने की इच्छा सफल नहीं हो सकी।

अनुवाद कार्य में उनकी गहरी रूचि थी। विभिन्न भाषा साहित्य को जन–जन तक पहुँचाने तथा उसे समृद्ध करने के प्रति हमेशा विचारमग्न रहती थीं। अनुवाद के सहज प्रवाह एवं सजीवता के प्रति सचेष्ट रहती थीं। वैसे भी मूल भाषा की सामाग्री को अपनी भाषा की प्रकृति के अनुसार लिखना श्रेयष्कर है, जिससे भाषा की सजीवता और स्वाभाविकता बनी रहे। मूल में क्या भाव निहित है और उसका सीमा क्षेत्र तथा उसकी व्यापकता कितनी है का ज्ञान जब तक नहीं होगा वह सही परिप्रेक्ष्य में सही अनुवाद नहीं कर सकेगा।

वे आजकल के छात्रों में अध्ययन के प्रति उदासीनता को देख अत्यन्त दुःखी रहती थीं, वे कहा करती थीं कि आज–कल के छात्र कुछ पढ़ना ही नहीं चाहते। लगन और परिश्रम का अभाव है। साहित्य में रूचि नहीं रह गई –

"विद्या, ज्ञान, संयम
गुरू–शिष्य–सम्बन्ध
भारतीय मनीषा के सम्बन्ध आदर्श
ईर्ष्या, पिप्सा और प्रतिहिंसाक
लघु परिधि मे आबद्ध भ' गेल अछि।"[16]

इससे पता चलता है कि उनको पढ़ने–लिखने से कितना लगाव था। इलारानी के छात्र–जीवन की उपलब्धि उतनी अच्छी नहीं थी। मैट्रिक और आई. ए. में उनको तृतीय श्रेणी थी, बी.ए. और एम.ए. में द्वितीय वर्ग। उन्होंने 1967 ई. में बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर से मैथिली में प्रथम वर्ग में उत्तीर्णता पाई। लेकिन लगन और परिश्रम, साथ ही प्रबल महत्त्वकांक्षा ने उनको आगे बढ़ाया। जिसके प्रमाण हैं – उनकी प्रकाशित कृत्तियाँ। मैंने अपने उन्वेषण के क्रम में देखा है कि उनकी साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक योगदान है। यदि उनकी पचास वर्ष की उम्र में कैंसर की बीमारी से अकाल मृत्यु नहीं हुई होती तो हिन्दी, मैथिली एवं बंगला साहित्य के विकास में अनवरत अहम् भूमिका निभाती रहतीं।

इलारानी अपने लिए उतनी चिन्ता नहीं करती थीं, जितनी की अपने शोधछात्रों के लिए। डॉ. शरतचन्द्र सिंह अपने शोध के प्रेरणा स्रोत अपनी निविष्ठ निर्देशिका को मानते थे। वे कहते थे कि साहित्य जगत में मुझे लाने का एक मात्र श्रेय भूषण बहन को जाता है, जिन्होंने मेरे जैसे परम आलसी से मात्र पी–एच0डी0 ही नहीं अपितु मुझे सक्रिय भी बना दीं।

यह सत्य है कि प्रबोध बाबू के कलकत्तास्थ निवास एक सारस्वत पीठ रहा है। क्या हिन्दी, क्या बंगला, क्या मैथिली क्या अंग्रेजी आदि–आदि भाषों और साहित्य–सृजनों का संगम स्थल रहा है। अब तो नहीं प्रबोध बाबू, नहीं अणिमा सिंह और नहीं इलारानी सिंह उस सारस्वत पीठ के पुजारी जीवित रहे। लेकिन भाषा और साहित्य के अनुरागी उन लोगों को याद करते रहेंगे।

मैंने इस बात की चर्चा की है कि इलारानी के छात्र–जीवन की उपलब्धि उतनी अच्छी नहीं थी। किन्तु उनकी गहन अध्ययन, अध्यापन एवं प्रबल साहित्यिक महत्त्वाकांक्षा अन्तिम सांस तक बनी रही। इलारानी को विभिन्न भाषाओं और साहित्यकारों से घरेलू सम्बन्ध था। ऐसी स्थिति में क्यों नहीं उनकी महत्त्वाकांक्षा प्रबल होती। इसी का प्रतिफल रहा कि कम उम्र में ही उनको उतनी उपलब्धि मिली।

डॉ. इलारानी सिंह में दोनों प्रतिभाओं का कारयित्री एवं भावयित्री का मणिकांचन संयोग था। एक तरफ उसमें प्राचीन एवं अर्वाचीन–साहित्य के प्रति शोधात्मक दृष्टि थी तो दूसरी तरफ नूतन सर्जना। इलारानी में इन दोनों का दुर्लभ संयोग विद्यमान था। वे बहुमुखी प्रतिभा की धनी थीं। एक ओर जहाँ भाषा–विज्ञान और व्याकरण, लोकजीवन से सम्बद्ध लोकगीत तो दूसरी ओर प्राकृत–अपभ्रंश, तो कहीं मुस्तिबोध की मुक्त चेतना का प्रभाव इन कालखंडों के अंतराल के बावजूद एक दूसरे साथ समीपता इलारानी के साहित्य साधना को दर्शाता है। हिन्दी–मैथिली–बंगला की त्रिवेणी समान रूप से उनके अन्दर प्रवाहित होती रही। इनकी कृतित्वों पर अनुसंधान करने की असीम संभावनाएँ हैं।

संदर्भ

1. स्मरण को पाथेय बनने दो, पृ. 13–14.
2. तत्रैव, पृ. 14.
3. स्मारिका, चेतना समिति, पटना, 1995, पृ. 25.

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

4. स्मरण को पाथेय बनने दो, पृ. 13.
5. जनसत्ता (सबरंग) 14 जनवरी, 1996, पृ. 25.
6. मिथिला दर्शन प्रा. लि. 14 बी, ब्रजनाथ मित्तल लेन, कलकत्ता–9, 1965
7. मैथिली रंगमंच, 162/ए/85, लेक गार्डेन्स, कलकत्ता–45, प्र.सं0 1968.
8. लोकसाहित्य परिषद्, 162/80, लेक गार्डेन्स, कलकत्ता–45, 1968.
9. साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली– 110001, 1988.
10. मि. दर्शन प्रा. लि., 162/80 लेक गार्डेन्स कलकत्ता– 45.
11. तत्रैव
12. तत्रैव, पृ. 56.
13. श्रीहनुमान साहित्यानुसंधान संस्थान–1, हनुमानजी लेन, कलकत्ता–1, प्र.सं. –1992.
14. स्मरण को पाथेय बनने दो– पृ.– 7.
15. फूटते हैं अंकुर–इलारानी सिंह, लोक साहित्य परिषद्, ए–132, लेक गार्डेन्स, कलकत्ता– 700 145, प्र. सं.– 1989, पृ. 13.
16. विन्दन्ती, मि. दर्शन प्रा. लि., 162/80 लेक गार्डेन्स कलकत्ता– 45. पृ. 37.

© RRIJM 2015, All Rights Reserved